हिंसा का मुकाबला

हृदय-परिवर्तन कैसे होता है ? : १ :

हमारे काम मे जितनी वाते हैं, उनके अनेक पहलू होते है। लेकिन मूलभूत विचार अहिंसा का ही है। हम सब लोग जानते हैं कि अहिंसा की प्रक्रिया हृदय-परिवर्तन पर आधार रखती है। हृदय-परिवर्तन की अपनी एक पद्धति है। मनुष्य कभी-कभी जानता भी नहीं कि उसका हृदय-परिवर्तन हो रहा है। कभी-कभी जान भी सकता है। वह प्रक्रिया ऐसी है। हमे इसका ध्यान रखना चाहिए कि हमारे विचार, सोचने की पद्धति आदि उसमे बाधक न हों। हमारे देश में भिन्न-भिन्न राजनैतिक पक्ष हैं, भिन्न-भिन्न आर्थिक विचार है। चूँकि देश बडा है, इस वास्ते समस्याएँ भी बड़ी हैं। अतः अनेकविध विचार होते हैं, विचार-भेद पैदा होते हैं। हम जब हृदय-परिवर्तन और विचार-परिवर्तन की बात कहते है, तो हमेशा हमारे सामने दूसरो के ही विचार-परिवर्तन की बात होती है, ऐसा नहीं है। हमारे अपने और दूसरों के भी विचार-परिवर्तन, हृदय-परिवर्तन की बात होती है या होनी चाहिए। इस तरफ ध्यान कम जाता है कि हमारे अपने विचारों और हृदय मे भी बहुत परिवर्तन की आवश्यकता होती है। इसलिए हृदय-परिवर्तन की यह प्रक्रिया सबके लिए लागू है। हमसे भिन्न विचार रखनेवाले के लिए ही लागू है, ऐसा नहीं।

उपासना में श्रम का आधार

इस प्रक्रिया के बारे मे मुझे जो विशेष बात कहनी थी, वह यह कि उसमें 'श्रम' का भी स्थान है। यह एक अजीब-सी बात मैं कह रहा हूँ। हमें उपासना करने में इसका हमेशा अनुभव होता है।

उपासना में भ्रम का कुछ आधार लेना पड़ता है। आखिर में वह आधार उड़ जाता है। फिर वह उपासना आदत से जारी रहे, या छूट जाय, दोनों बातें हो सकती हैं। परन्तु जब तक उसकी जरूरत है, तब तक उसके मूल में जैसे विचार होता है, वैसे भ्रम भी होता है। शुद्ध विचार में उपासना टिकेगी ही नहीं और केवल भ्रम में भी उपासना नहीं टिकेगी। जहाँ विचार और भ्रम दोनों होते हैं, वहीं उपासना होती है। यही दृष्टांत हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया के लिए लागू होता है।

कम्युनिस्ट और हम

इन दिनों आन्ध्र-देश में देखा, बल्कि थोड़ा-बहुत उड़ीसा से ही देख रहा हूँ कि आजकल कम्यूनिस्ट लोग कहने लगे हैं कि 'भूदान का जो मूल विचार है, वह हमारा ही विचार है। उसके साथ हम सहमत हैं। मालकियत किसीकी न हो—न सिर्फ जमीन की मालकियत, बल्कि सभी प्रकार की सम्पत्ति की मालकियत न हो—यह बात बाबा अब कह रहा है।' पहले से कह रहा है, यह बात शायद वे लोग नहीं जानते। अब जितना जोर देता है, पहले शायद उतना जोर नहीं देता होगा, यह भी सम्भव है। परन्तु वे समझते हैं कि इतना परिवर्तन बाबा में हुआ ही है। मेरा खयाल है, कुछ परिवर्तन हुआ भी है, कुछ नहीं भी हुआ। फिर भी वे समझते हैं कि यह विचार असल में कम्यूनिस्टों का ही विचार है और यह उनको सर्वथा पसन्द है। हमारे विचार में और कम्यूनिस्टों के विचार में कुछ फर्क भी है, बावजूद इसके कि वे मालकियत तोड़ने की बात पसन्द करते हैं। कभी किसी विशेष मौके पर समझा भी देता हूँ कि उनमें और हममें अन्तर क्या है। लेकिन अक्सर नहीं समझाता। खास कार्यकर्ताओं की सभा में समझा देता हूँ। आम सभाओं में तो कहता हूँ कि 'वे जो समझते हैं वह ठीक है, इसलिए उनका पूरा समर्थन हमें मिलना चाहिए।'

अब इसमें उनका कुछ भ्रम है और कुछ सही विचार भी है।

हमारा उनका मेल हो रहा है, ऐसा वे मानते हैं। ऐसा मानने में कुछ सत्य है और कुछ भ्रम भी। मैं दोनों की कीमत करता हूँ और दोनों की जरूरत समझता हूँ। उसके बिना हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया नहीं हो सकती। वह प्रक्रिया ही ऐसी है कि मनुष्य को यह भास नहीं होता कि मैं अपना विचार छोड़कर दूसरा विचार ले रहा हूँ। कभी-कभी ऐसा भास होगा भी, लेकिन अक्सर नहीं होगा। अक्सर यही लगेगा कि जिस विचार को मैं मानता आया हूँ, उसीका यह नया रूप है; बल्कि अधिक शुद्ध रूप है, परन्तु है यह उसीका भाषान्तर। अन्य भाषा में वही विचार प्रकट हो रहा है, शायद भाषा कुछ बेहतर है; लेकिन है वह मेरा ही मूल विचार। ऐसा यदि उसको लगता है, तो हम उसका खंडन नहीं करेंगे। मैं अपनी वृत्ति इसी तरह की बना रहा हूँ। कभी मौके पर प्रेम से समझा भी देता हूँ कि कितना फर्क है। परन्तु उनका खंडन हम नहीं करेंगे। बल्कि कहेंगे कि हाँ, इस मामले में हमारे और आपके विचार एक ही हैं, इसलिए आपका पूरा सहयोग हमें मिलना चाहिए।

प्रजा-समाजवादी और कांग्रेसवादी

प्रजा-समाजवादी और कांग्रेसवादी तो पहले से ही यह बात कहते थे। अब कांग्रेसवाले कुछ अधिक कहने लगे हैं कि 'यह विचार उत्तम है, हमारा ही विचार है।' पहले तो वे इस पर ऐसे भी आक्षेप करते रहे कि इससे जमीन के टुकड़े होंगे, आदि। अब वे आक्षेप ज्यादा उठाये नहीं जाते। अब वे इसके साथ एकरूपता का नाता जोड़ते हैं और कभी-कभी कहते हैं कि यह काम और कांग्रेस का काम एक ही है। यह कांग्रेस का ही काम है, ऐसा भी कहते हैं। मैं उसका प्रतिवाद नहीं करता। उसमें कुछ भ्रम है और कुछ सत्य।

भ्रम और सत्य, दोनों की जरूरत

भ्रम और सत्य, दोनों का होना हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया की एक अवस्था में जरूरी होता है, ऐसा मैं देखता हूँ। मनुष्य पहले केवल भ्रम में होता है। वहाँ से उसको केवल सत्य में जाना है। अब,

केवल भ्रम से केवल सत्य में जाने के लिए रास्ते में ऐसी भूमिका आयेगी, जब कि उसके मन में कुछ भ्रम और कुछ सत्य का आभास होगा। तब हम अगर फौरन उसका खंडन करेंगे, तो उसका चित्त चलित होगा और एक विरोध स्थापित हो जायगा। वह यह समझ करके हमारी तरफ आ रहा है कि मानो हम ही उसकी तरफ जा रहे हैं। यह जो वह मानता है, वैसा मानने का उसको अधिकार है। चाहे उसमें कुछ भ्रम भले ही हो, कुछ सत्यांश भी हो सकता है। हम अपनी भूमिका बिलकुल छोड़ते ही नहीं, ऐसा तो है नहीं। हम भी कुछ उधर को जाते हैं और वे कुछ इधर को आते हैं। इस तरह बीच रास्ते में कुछ भ्रम के लिए मौका रहता है। उस भ्रम का खंडन करना अहिंसा के लिए बाधक होगा, यदि सत्य के खयाल से वह खंडन किया जाता हो तो।

चुभनेवाले सत्य में अहिंसा की कमी

अब यहाँ यह विषय जरा सूक्ष्म हो रहा है। सत्य के विरुद्ध मानो अहिंसा खड़ी है, ऐसा आभास होता है, लेकिन वह आभास ही है। परन्तु वास्तव मे सत्य कभी प्रहार नहीं करता, सत्य चुभता नहीं। अगर वह वास्तव में सत्य हो, तो वह हमेशा प्राणदायी होगा। जो तत्त्व प्राणदायी है, वह अहिंसक तो होगा ही, चुभेगा भी नहीं। इसलिए जहाँ सत्य चुभता है, वहाँ उसकी सत्यता में ही कुछ कमी होती है। वह कमी सिर्फ अहिंसा की कमी नहीं होती। चुभनेवाले सत्य मे अहिंसा की कमी तो स्पष्ट ही है। लेकिन उसमे सत्य का अंश भी कुछ कम होता है। इसीलिए वह चुभता है। अहिंसा की दृष्टि से ऐसे भ्रम का खंडन उचित नहीं है। यदि ऐसा भास हो कि सत्य के लिए भ्रम का खंडन करना जरूरी है, तो वह केवल भास ही होगा, वह यथार्थता नहीं होगी।

मत-परिवर्तन की मिसालें

कुछ राजनैतिक पक्ष हमारे विचारों का ग्रहण कुछ अंश में कर रहे हैं। आजकल अप्रत्यक्ष चुनावों की बात चल पड़ी है। दो-तीन

साल से हम उस चीज को कहते आये हैं। अब वह विचार लोग कुछ मात्रा में मानने लगे हैं। पहले भी कुछ मानते थे। ऐसा नहीं कि बिलकुल नहीं मानते थे। पहले किसी कारण उन्हें लगता था कि यह नहीं हो सकता। अब हो सकेगा, ऐसा लगता होगा। तो, एक परिवर्तन-सा हो रहा है। यह नहीं कि हमारे विचारो के कारण कुछ परिवर्तन हो रहा है। यह सम्भव है कि कुछ ऐसे संयोग दुनिया मे पैदा हो गये हैं, जिनको हम न जानते हो। हालाँकि मैं तो महसूस करता हूँ—यद्यपि जानता नहीं, लेकिन भीतर से अनुभव करता हूँ—कि दुनिया मे कुछ ऐसी प्रक्रियाएँ चल रही हैं, जो मनुष्य को एक विशिष्ट बिन्दु पर लाने की चेष्टा कर रही हैं। उस चेष्टा के परिणामस्वरूप हम भी दूसरों की तरफ जा रहे हैं और दूसरे हमारी तरफ आ रहे हैं। इसलिए फलाने ने फलाने का विचार-परिवर्तन किया या कराया, यह भाषा भी गलत है और यह विचार भी गलत है। मैं नहीं समझता कि जिन लोगो ने यह विचार अभी प्रकट किया कि अप्रत्यक्ष चुनाव होने चाहिए, उनका पहले से कोई भिन्न विचार था। सम्भव है, पहले से भी उनके मन मे यह विचार रहा हो। किसी कारण वे उसे प्रकट न कर सके हों और अब प्रकट कर रहे हो। यह तो मैंने सिर्फ एक मिसाल दी। इस तरह हृदय-परिवर्तन की कई मिसालें हिन्दुस्तान मे और हिन्दुस्तान के बाहर हो रही हैं। हमसे जिसका पहले ज्यादा मेल नहीं था, उससे अब थोड़ा ज्यादा हो गया है। जाहिर है कि मेल अगर थोड़ा ज्यादा हो गया, तो फर्क थोड़ा ही बचा है। इसलिए उस फर्क पर हम जोर न दें। बल्कि अगर वे कहते हैं कि आप और हम एकरूप हैं, तो हम भी कबूल करते हैं—यह समझ करके कि उनकी मार्फत कुछ काम हो। काम होने के बाद विचार की सफाई के लिए गुंजाइश होगी। तब विचार की सफाई के लिए हम और कोशिश करें।

हमारे मन में गड़बड़ी न हो

इस तरह का मत-परिवर्तन न सिर्फ राजनैतिक क्षेत्र में ही हो रहा है, बल्कि आर्थिक क्षेत्र में भी हो रहा है। मुझे तो खुशी हुई,

जब मैंने खादी-बोर्डवालों का यह प्रस्ताव पढ़ा कि फलाने-फलाने उत्तम कार्य का सरकार ने एक अंश तो कबूल किया, अम्बर चरखे की हद तक। उस प्रस्ताव में वे यह भी कहते हैं कि 'सर्व-सेवा-संघ की मदद हमें अब तक मिली है और आगे भी मिलेगी। क्योंकि सर्व-सेवा-संघ का जन्म ही किस काम के लिए हुआ? इसी काम के लिए।' मैं कबूल करता हूँ, वह प्रस्ताव पढ़ने पर मुझे बड़ा आनन्द हुआ। इसलिए नहीं कि इस विचार में कोई भ्रम नहीं है, बल्कि इसलिए कि ऐसे भ्रम की जरूरत होती है। सामनेवाले को तो यह लगे कि आप और हम एक हैं, लेकिन आप कहें कि 'नहीं-नहीं, आप और हम एक नहीं हैं, हमारा अपना अलग है', यह ठीक नहीं। जब वह कहता है कि आप और हम एक हैं, तो हम भी समझें कि 'हाँ ठीक है'। जो बारीक फर्क होता है, वह रहने दें। हमारे मन में कोई गड़बड़ी (कन्फ्यूजन) न हो, यह जरूरी है। परन्तु अगर वह हमारे साथ अपनी एकरूपता मानता है, तो हम उसके साथ अपनी भिन्नता ही देखते रहें, यह उचित नहीं। उसका काम होने दें। कुछ कार्य बढ़ने पर फर्क दिखाई देगा। तब वह भी सोचने के लिए तैयार हो जायगा। दोनों आगे बढ़ेंगे।

एक तरह का मूर्ति-खंडन

तो, ये सारे जो कार्य चल रहे हैं, वे हमसे कुछ भिन्न अवश्य हैं, लेकिन वे हमारे कुछ हिस्से कबूल करते जाते हैं, हमारे साथ एकात्मता मान लेते हैं। यहाँ तक कि पं० नेहरू ने यह कहा—ऑल इण्डिया कांग्रेस कमेटी में, जहाँ मैं था—कि '*सर्वोदय*' शब्द बहुत अच्छा है और यह विचार भी अच्छा है। सिर्फ शब्द ही नहीं, बल्कि यह विचार भी सुन्दर है। यह अपने इस देश की जनता के मन में से निकला है, जनता के मानस से निकला हुआ है।' मैं बिल्कुल उनके शब्द नहीं बोल रहा हूँ, लेकिन उनके कहने का भाव ऐसा था। तो उन्होंने कहा कि 'यह शब्द सर्वथा सुन्दर है। परन्तु हम उसके पात्र हैं, ऐसा नहीं लगता। उस हालत सका नाम लें और हमारा काम उससे कुछ थोड़ा भिन्न हो, यह

ठीक नहीं। इसलिए हम अभी 'सोशलिस्ट स्टेट' (समाजवादी राज्य) की बात करते हैं।' फिर उन्होंने एक बात और जोड़ दी कि 'यद्यपि 'समाजवाद' कह देने से कोई खास अर्थ नहीं निकलता; उसके पचासो अर्थ निकलते है—यह सही है। फिर भी कुछ भाव उसमे से सबके समझने लायक निकल आता है।' उन्होंने जो कहा, उसका सारांश यह था। तो, अब अगर वे कहें कि 'हाँ, सर्वोदय अच्छा है और हम भी सर्वोदय की तरफ जाने की कोशिश करते हैं और करेंगे', तो उनका वह दावा भी सही होगा, ऐसा मैं समझूँगा। धीरे-धीरे वे उस शब्द का सही मतलब समझ लेंगे। हम भी उनकी बात कुछ समझेंगे, वे भी हमारी बात कुछ समझेंगे। इसलिए उस दावे का मैं खंडन नहीं करता। इस तरह का खंडन एक प्रकार से मूर्ति-खंडन होता है और यह प्रक्रिया अहिंसा के लिए बाधक होती है।

उपासना-दृष्टि और ज्ञान-दृष्टि

अब, दो प्रकार से सोचा जा सकता है। एक तो यह कि 'हम आज सर्वोदय नहीं बना रहे हैं; लेकिन सर्वोदय बनाना हम अपना उद्देश्य जरूर मानते हैं; इसलिए हम 'सर्वोदयवादी' हैं'—यह कहना, यह एक पद्धति है। दूसरी पद्धति यह है कि चाहे हम सर्वोदय भले ही बनाना चाहते हो; फिर भी आज वह नहीं बन रहा है, इसलिए आज हम 'सर्वोदय' का नाम नहीं लेंगे। इन दोनो पद्धतियो मे गुण है। पहली पद्धति मे उपासना अधिक है, तो दूसरी पद्धति मे ज्ञान। जब मैं कहता हूँ कि 'मैं ब्रह्म हूँ और यह शारीरिक पिंड नहीं हूँ', तो कहनेभर से मैं शरीर से अलग नहीं हो जाता। पर मैं शरीर से अलग होना और ब्रह्मरूप होना चाहता जरूर हूँ। इस दृष्टि से आज ही 'मैं ब्रह्मरूप हूँ', 'शरीर से भिन्न हूँ' ऐसा जप मैं करता रहता हूँ। यह जप करना वस्तुस्थिति के साथ, स्थूल वस्तुस्थिति के साथ, मेल नहीं खाता—इस अर्थ मे यह एक भ्रम ही है। परन्तु वह भ्रम परम सात्त्विक है और उसकी जरूरत है। 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा कहने से आज मेरा तात्पर्य इतना ही है कि 'मैं ब्रह्म होना

चाहता हूँ।' चाहना जब किसीको सूझा, तब वह जिस वस्तु को प्यार करता है, उस वस्तु के साथ उसका हृदय तन्मय है, इस दृष्टि से उसके कहने में सत्य भी आता है। यह उपासना की पद्धति है। हम आज जो सर्वोदय का दावा करते हैं, उसमें हमारी उपासना-दृष्टि है। प० नेहरू कहते हैं कि 'हम सर्वोदय चाहते तो हैं, लेकिन सर्वोदय के तत्त्व पर हम काम नहीं कर पाते और इसी वास्ते नाम नहीं लेते।' इसमें ज्ञान-दृष्टि है। हम नाम लेते हैं तो कोई बड़ा काम कर पाते हैं, ऐसा नहीं। हम उसका नाम लेते हैं, इसमें भी गुण है, नेहरूजी अभी उसका नाम नहीं लेते, इसमें भी एक गुण है। हम नाम लेते हैं, इसलिए उसके लायक काम करते हैं, ऐसा नहीं है। आगे हम करना चाहते हैं। पर अपनी सद्वासना को प्राप्ति का रूप देकर हम एक भ्रम रखते हुए उपासना करना चाहते हैं। यह उपासना की पद्धति है। और जो ज्ञान की दृष्टि से देखता है, वह कहता है कि 'नहीं, जब तक मैं उस लायक नहीं हुआ, तब तक मैं उसका दावा नहीं करूँगा।'

वस्तुनिष्ठा और ध्येयनिष्ठा

एक प्रसिद्ध श्लोक है: 'तद्ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसंघः।' इस पर किशोरलाल भाई का और हमारा हमेशा झगड़ा चलता था। पुरानी बात है, बहुत पुरानी, आश्रम के आरम्भकाल की। वे कहते थे कि 'यह श्लोक मुझे बिल्कुल जँचता नहीं। मुझे उसका अनुभव नहीं होता। सुबह से लेकर शाम तक खाना-पीना, स्नान आदि सब शरीर का कार्य चलता रहता है। कभी-कभी सोचने पर मन में भले ही आ जाय कि मैं देह से अलग हूँ। बहुत हुआ तो पाँच मिनट सोचता हूँ, दस मिनट सोचता हूँ। चौबीस घंटे में दस-बीस मिनट छोड़ करके बाकी सब समय देह की सेवा, देहमयता में ही जाता है। इसलिए 'मैं देह नहीं हूँ और आत्मा हूँ' यह बोलना मुझे गौण मालूम होता है।' 'यह श्लोक मैं तो नहीं गाऊँगा', ऐसा वे कहते थे। मैं उनको समझाता था कि 'भाई, इसमें जो भ्रम है, वह उपासना का है।' यह वाद आखिर में मिटा। आखिर के दिनों में उनका एक पत्र आया था। उसमें लिखा था कि 'आपको सुनकर

अच्छा लगेगा कि जिस श्लोक के लिए मेरा पहले आक्षेप था, वही मुझे सबसे अधिक श्रेष्ठ श्लोक मालूम हो रहा है। वही श्लोक आज मुझे काम देता है।' सारांश, भिन्न-भिन्न वृत्तियों के कारण कोई ज्ञान पर जोर देता है, तो कोई उपासना पर। ज्ञान पर जो जोर देता है, वह वस्तुनिष्ठ (रियलिस्टिक) ज्यादा रहता है। जो उपासना पर ज्यादा जोर देता है, वह ध्येयनिष्ठ (आइडियलिस्टिक) अधिक होता है। इसीलिए उसमें कुछ भ्रम रहता है। इस दृष्टि से विचार-परिवर्तन या हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया में जो लोग या जो पक्ष हमारे कुछ नजदीक चले आते हैं, या हम भी उनके जानते हुए या न जानते हुए उनके कुछ नजदीक चले जाते हैं–ऐसी हालत में एकता का जो अनुभव वे करते हैं, उसका हमें कभी खंडन नहीं करना चाहिए। बल्कि उस एकता को कबूल ही कर लेना चाहिए। हमें ऐसा काम करना चाहिए, जिससे वह एकता वास्तविक हो जाय। काम करने के बाद हम और भी नजदीक आयेंगे। तब विचारों में जो भेद होगा, उसकी अधिक सफाई होगी।

सत्य खुलकर रहेगा

यह मैंने इसलिए कहा कि अहिंसा में विचार-परिवर्तन, हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया ही मुख्य अंश है। वह प्रक्रिया किस तरह से प्रकट होती है और किस तरह से काम करती है, इसकी तरफ ध्यान देकर हमें सत्य पर गलत जोर नहीं देना चाहिए। यह विश्वास रखें कि सत्य जब हम पहचानते हैं, तो वह कभी छिपेगा नहीं, वह खुलता ही रहेगा। बिना बुद्धि खुले सत्य नहीं खुलता। हम वाणी से किसीको कितना ही समझायें, हम चाहे जो करें, जब तक उसकी बुद्धि नहीं खुलती, तब तक मेरे लिए सत्य नहीं खुलेगा। इसलिए सत्य को खोलने की हम चिन्ता न करें। हाँ, सत्य को समझने की जरूर चिन्ता करें। अपने मन में सत्य को जरूर समझें। पर उसे उतना ही खोलते रहें, जितना कि सामनेवाला ग्रहण करता जाय। मेरा खयाल है

प्रक्रिया अहिंसा के लिए अधिक अनुकूल है। सत्य के लिए भी उसमें बाधा नहीं है, बल्कि अनुकूलता है।

धर्मपुरी
५-८-'५६ —प्रवचन से

अखिल भारतीय सेवकत्व खतरे में : २ :

इन दिनों अखिल भारतीय सेवकत्व खतरे में आ गया है। जब अंग्रेजों से मुकाबला करना था, उस वक्त एक सामान्य संकट सबके ऊपर था, इस वास्ते लोग छोटे-छोटे द्वेष भूल गये थे। उन्होंने अन्दर से द्वेष छोड़े थे ऐसा तो नहीं, लेकिन भूल गये थे। इस प्रकार एक अखिल भारतीय सेवकता दिखाई पड़ी। मैं नेतृत्व की बात नहीं करता, इसलिए कि हमारी विचार-श्रेणी में नेतृत्व आता ही नहीं। जो आता है वह है सेवकत्व, भ्रातृत्व या बंधुत्व। अब चूँकि प्रान्तों का बँटवारा भाषा के अनुसार होगा, इसलिए हर प्रान्त का कारोबार भी उसकी भाषा में चलेगा, जो उचित भी है। लोग अक्सर उस प्रान्त की ही सोचेंगे। इससे अखिल भारतीय सेवकत्व ढीला ही पड़ेगा, ऐसा सम्भव है। केन्द्रीय सरकार तो हर हालत में तब तक चलेगी ही, जब तक कि शासन-मुक्ति नहीं आती। जो केन्द्रीय सरकार में जायँगे, वे अखिल भारतीय नेता ऐसे ही बन जायँगे, चाहे उनके मन उसके अनुकूल हुए हों या न हुए हों। उस पद के कारण ही उनका अखिल भारतीय कार्य-संचालन चलेगा और वे अखिल भारत के लिए कुछ बोलते रहेंगे। इसको मैं अखिल भारतीय सेवकत्व नहीं कहता। विशुद्ध अर्थ में वह सेवकत्व नहीं है। उसमें कुछ अधिकार की बात है, कुछ सत्ता भी है। यह हो सकता है कि जो मनुष्य वहाँ रहेगा, वह केवल सेवा के लिए ही सत्ता या अधिकार का उपयोग करे और करना भी चाहिए। परन्तु उसमें सत्ता का अंश तो रहेगा ही। इस वास्ते मैं उसको सेवकत्व नहीं मानता। जब तक केंद्रीय सरकार रहेगी, तब तक अखिल भारतीय सेवकत्व कुछ लोगों पर लादा ही

जायगा। लेकिन लादी हुई भूमिका से अनुभूति नहीं होती। आज पं० नेहरू हैं। चूँकि वे प्रधानमंत्री हैं, इसलिए वे अखिल भारतीय नेता हैं, ऐसी बात नहीं है। वे स्वतन्त्र रूप से अखिल भारतीय नेता हैं। इसके अलावा वे प्रधानमंत्री भी हैं। दूसरा कोई व्यक्ति प्रधान-मंत्री हो जाय, तो उतने से वह अखिल भारतीय सेवक हो जायगा, ऐसा हम नहीं मानते। शायद प्रधानमंत्री कुछ अंश में हो भी सकता है, क्योंकि वह बहुत लोगों की सम्मति से चुना जायगा। जिनमें कुछ तो सेवकत्व होगा, ऐसे ही लोग प्रधानमंत्री चुने जायँगे। लेकिन बाकी के जो मंत्री बनाये जायँगे, वे हृदय से अखिल भारतीय सेवक होंगे, ऐसा नहीं मान सकते। इसलिए अखिल भारतीय सेवकत्व का रक्षण केन्द्रीय सरकार में जानेवाले व्यक्तियों से होगा, ऐसा मानकर हम निश्चित न बनें। अखिल भारतीय सेवकत्व किस तरह बना रहे, इसकी हमें चिन्ता करनी चाहिए। इस काम में सर्व-सेवा-संघ जैसी संस्था बहुत-कुछ कर सकती है।

सेवा में प्रान्तीयता खो जावे

अभी तीन-चार साल पहले मैंने कृष्णदास से कहा था कि तुम्हें तो सेवा के लिए दक्षिण का क्षेत्र ही चुनना चाहिए और उस क्षेत्र की भाषा भी सीखनी चाहिए। अब, मान लीजिये कि ऐसा शख्स तमिलनाड़ की सेवा करता है। या फिर उधर ईश्वरलाल है, जो उड़ीसा में सेवा कर रहा है। ऐसी मिसालें जितनी अधिक होंगी, उतना अखिल भारतीय सेवकत्व जिन्दा रहेगा। इसकी बहुत जरूरत है कि भिन्न-भिन्न भाषावाले लोग भिन्न-भिन्न प्रान्तों में सेवा करने के लिए जायँ। सरकार की तरफ से तो योजना है कि नौकरियों के एक निश्चित प्रमाण में प्रान्त के बाहरवालों को नियुक्त करना चाहिए। उतना सरकार करती है और वह ठीक करती है। जिस ढंग से वे सोचते हैं, वह ठीक ही है। लेकिन इतने से यह कार्य नहीं होगा। लोगों की तरफ से कुछ होना चाहिए। इस दृष्टि से भी हमारा कुछ चिन्तन चले और हमारे मन में ऐसी योजनाएँ हों कि जिन-जिन

लोगों का अपने प्रान्त के अलावा दूसरे प्रान्तों से सम्बन्ध आया है या आ सकता है, वे उस सम्बन्ध को बढ़ायें। कोशिश यह होनी चाहिए कि सेवक के मन में प्रान्तिक विचार ही न रहे। सेवा के परिशुद्ध विचार में सारी प्रान्तीयता खो जाय। हमें यह दृष्टि रखनी होगी। यह अहिंसा के लिए भी बहुत जरूरी है। नहीं तो अगर कहीं भिन्न-भिन्न जातित्व स्थिर बना, पक्का बना, तो दूसरों के विषय में पूर्वग्रह बढते चले जायँगे। 'दूसरी भाषावाला हमारा क्या कल्याण करेगा?', 'वह हमारी क्या सेवा करेगा?', 'किसी हालत में नहीं करेगा', ऐसी भावना पैदा होगी। यदि दूसरी भाषावाला नहीं कर सकता, तो फिर खयाल आयगा कि ब्राह्मण तो कर ही नहीं सकता। आज यही होता है। फलाना प्रतिनिधि फलाने 'इंटरेस्ट' या 'स्वार्थ' के वास्ते है—यह 'ब्राह्मणों के इंटरेस्ट' को 'रिप्रेजेण्ट' करता है, ब्राह्मणों का प्रतिनिधित्व करता है, यह फलाने 'इण्टरेस्ट' को और यह मुसलमानों के इण्टरेस्ट को, आदि-आदि। माना यह जाता है कि मुसलमानों का स्वार्थ मुसलमान ही देखेगा, अछूतों का स्वार्थ अछूत ही देखेगा। यों मानकर योजनाएँ की जाती हैं।

अन्तर्प्रान्तीय सेवा

ये सब मान्यताएँ वास्तव मे गलत हैं और हमें उन्हें गलत साबित करना चाहिए। इस दृष्टि से भी हमारा कुछ चिन्तन चलना चाहिए और कुछ कार्य-योजनाएँ बननी चाहिए। इस लिहाज से अण्णासाहब वहाँ सेवा करते हैं, उडीसा में, यह मुझे बहुत अच्छा लगता है। इसके कई प्रकार के जरिये सर्व-सेवा-संघ निकाल सकता है। इस तरह की सेवा करनेवाली टोलियाँ जितनी बढ़ेगी, उतनी अधिक उनकी आवश्यकता भी बढ़ेगी। कुछ प्रान्तों के अनेक बिखरे हुए टुकड़े इकट्ठे करके नये प्रान्त बनाये जा रहे हैं, जैसे कर्नाटक। पहले अनेक टुकडों मे बँटा हुआ था। जैसे आन्ध्र। जैसे महाराष्ट्र या गुजरात। जैसे नया बननेवाला मध्यप्रदेश। ये सारे भिन्न-भिन्न टुकड़ों को इकट्ठा करके बने हैं। मध्यप्रदेश की बात मैं छोड़ देता हूँ। वह एक विशेष परिस्थिति मे बना है। परन्तु बाकी के जो

नाम लिये, वे एक भाषावाले होते हुए भी अब तक अनेक भागों में बँटे हुए हैं। अब वे इकट्ठा हो रहे हैं। उनके बीच इकट्ठा होने के लिए एकरूपता है। अपना प्रान्त एक बने, यह इच्छा तो उन्होंने रखी। परन्तु एक प्रान्त बनने के बाद उनके जो आपस के भेद हैं, वे प्रकट होंगे। इस एकता को मैं क्या नाम दूँ? 'आध्यात्मिक' कहूँ, तो बहुत बड़ा शब्द हो जाता है। 'सांस्कृतिक एकता' कहूँ, तो शायद दिशा-बोध होता है। जो भी कहिये; लेकिन कुछ एकात्मता है।

शंकररावजी—"उसको इमोशनल, भावनात्मक कहते हैं।"

भूदान से भीतरी एकात्मता

विनोबाजी—हाँ, लेकिन 'इमोशनल', 'भावनात्मक' की यह बात है कि 'इमोशन', 'भावना' जितनी व्यापक होगी, उतना हमारा क्षेत्र भी बढ़ेगा। इसलिए ठीक सीमित अर्थ उस शब्द से नहीं निकलता। 'इमोशनल' (भावनात्मक) अगर कहें, तो मेरा खयाल है कि पूना के किसी मनुष्य को नागपुर के लिए जितनी 'इमोशन' (भावना) है, उससे बहुत ज्यादा भावना काशी के लिए होना संभव है। मिसाल के तौर पर मैंने यह कहा। 'भावना' शब्द हमारा पूरा अर्थ प्रकट नहीं करता। मेरे पास अभी उसके लिए शब्द नहीं है। सारांश, यह जो एकात्मता है, वह भूदान आदि काम से बनी रह सकती है। राजनीतिक पचड़े में पड़कर जो होगा—तुम्हारे प्रान्त के दो मंत्री हमारे क्षेत्र के दो मंत्री, आदि-आदि—वह बिलकुल ऊपरी चीज होगी। उससे कोई अन्दरूनी एकात्मता सधेगी नहीं। बल्कि उससे बिगड़ने का संभव ज्यादा है। किन्तु भूदान के द्वारा यह बात सध सकती है।

जब एक भाषा का पूरा मुल्क इकट्ठा हुआ, तो उसका पूरा लाभ लेकर एक और योजना यह भी हो सकती है कि शुद्ध विचार एक भाषा के जरिये हमें मिलें। तो, यह एकात्मता बढ़ाने के लिए भी हमें सोचना होगा। कम-से-कम इन चार-पाँच प्रांतों के लिए।

धर्मपुरी
४-८-'५६

हिंसा की चढ़ाई का मुकाबला कैसे करें? : ३ :

जो सबसे बड़ी बात है, वह यह कि वातावरण में हिंसा आयी है और हिंसा से कुछ काम बनता है, ऐसा लोगों को विश्वास हो रहा है। कुछ काम बनता तो है। पहले भी बनता था, अब भी बनता है। लेकिन वह काम ही बेकार है और वह बनेगा, तो भी देश का नुकसान ही होगा। यह सब अहिंसा की विचार-श्रेणी में आता है। अहिंसा की इस विचार-श्रेणी का इन दिनों बहुत जोरों से खण्डन हो रहा है। वैसे बोलने में तो ठीक है, सभी अहिंसा को मानेंगे। परन्तु वास्तव में आज हिन्दुस्तान की स्थिति, मानसिक स्थिति, डाँवाडोल है। जो श्रद्धाएँ गांधीजी ने बनायी थीं, वे दोनों प्रकार से टूट रही हैं। कुछ लोग उन श्रद्धाओं को एकांगी समझकर छोड़ रहे हैं। कुछ लोग हम उन श्रद्धाओं का उचित व्यावहारिक अर्थ करते हैं, और उस पर अमल हम ही करते हैं, ऐसा सोचकर उनको छोड़ देते हैं। छोड़ते हुए भी यह समझते हैं कि हम गाधीजी के ही विचारों का व्यवहार के अनुकूल अनुकरण करते हैं। नायकमजी ने मुझे बाइबिल के प्रचार की बात सुनायी। हरएक 'सोल्जर' के पास बाइबिल होती है। अब यह ढोंग है, ऐसा तो नहीं कह सकते। लड़ाई राष्ट्र की पुकार है, राष्ट्र की आवश्यकता है, ऐसा तो माना ही जाता है। इसलिए करुणावान् लोग भी उसमें शामिल होते हैं। साथ-साथ बाइबिल भी पढ़ते हैं और समझते हैं कि फौज में भरती होना कर्तव्य है। वे मानते हैं कि ईसा ने जिस उद्देश्य से हमें प्रतिकार बताया था, उसीके अनुसार हमें प्रतिकार करना है। याने इस तरह ईसा के काम को हम आज नहीं तो कल, दुनिया में पूरा करना चाहते हैं। आज दुनिया उसके लायक नहीं है, इस वास्ते उसका अमल हम सामाजिक क्षेत्र में नहीं कर सकते। ऐसा समझकर उन्होंने अपने मन को 'एडजस्ट' कर लिया है। अच्छी तरह से बाइबिल भी चलती है और यह शस्त्र-

व्यवहार भी चलता है। ढोंग उनके मन मे है नहीं। गांधीजी ने जो अहिंसा का विचार हमें दिया, उसकी हालत भी आज इसी तरह की हो रही है। कुछ लोग उसे एकांगी पहले भी समझते थे, आज भी समझते हैं और यह कहकर उसको छोड़ते हैं। दूसरे लोग उसको पहले भी अच्छा समझते थे और आज भी अच्छा समझते हैं। लेकिन उसके व्यावहारिक अमल के लिए उसको इतनी मात्रा तक छोड़ना ही पड़ता है, ऐसा समझकर उसको छोड़ रहे हैं। जब पूछा जाता है कि क्या इसका कोई पाप-पुण्य नहीं है ? तो वे यह भी कहते हैं—मुझे जो प्रत्यक्ष बातचीत मे अनुभव हुआ, वह कह रहा हूँ—कि 'हाँ, इसमे पाप जरूर है, लेकिन उतने पातक के बिना चारा नहीं है।' 'वह पातक हमारी सामाजिक जिम्मेवारी के साथ जुड़ा हुआ है। 'लेसर इविल' (छोटी बुराई) है। उसको हम नहीं करेंगे, तो उससे 'ग्रेटर इविल' (बड़ी बुराई) हमको उठानी पड़ेगी', यों समझ करके वे बड़े पाप से बचने के लिए छोटा पाप करते हैं।

हिंसा से विदा लेने का मुहूर्त आज हो

बहुत दफा मैं कहता हूँ कि आप अहिंसा का विचार मान्य करते हैं, यह तो बहुत अच्छी बात है, आज नहीं तो कल, उधर आप आयेंगे, ऐसा हम समझते हैं। अभी जो कुछ कार्य आप कर रहे हैं, वह भ्रममूलक है—ऐसा अगर हम कहें, तो उसका कोई उपयोग नहीं। क्योंकि हम ही भ्रम मे है—ऐसा आप हमारे लिए कह सकते हैं। 'आप भ्रम में हैं' कहने का जितना अधिकार हमे है, उतना ही आपको भी कहने का अधिकार है कि 'हम भ्रम में हैं।' इस वास्ते वह चर्चा हम नहीं करते। परन्तु मन में हमें लगता है कि इस तरह से हम अगर करते चले जायँगे, तो कहीं नहीं पहुँचेगे। प्राचीनकाल से आज तक हम यही करते आये हैं। इससे अहिंसा का बेड़ा पार नहीं होगा। हमे कभी-न-कभी हिंसा से बिलकुल विदा लेनी ही होगी। वह समय आज ही आया है या नहीं, यह आप देखें। हमें तो लगता है कि सब धर्मों के आचरण का अगर कोई उचित समय है, तो यही समय है। इसके

पहले था नहीं, क्योंकि वह हाथ से छूट गया है। इसके आगे का है नहीं, क्योंकि वह हाथ में नहीं है। यह क्षण हाथ मे है। हम जिसे ठीक धर्म समझते हैं, उसके आचरण के लिए हमारे हाथ मे यही समय है। इस क्षण को हम खोयें और आगे वह चीज हम करेंगे इस आशा से खोयें, इसमें हमें एक प्रकार का मोह लगता है। सभव है कि यह मोह न हो, और जैसा कि आप कहते हैं, 'रिअलिज्म' (वस्तुवाद) हो। लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि दोनों तरफ से अहिंसा पर प्रत्यक्ष प्रहार ही हो रहा है। जो अहिंसा में श्रद्धा रखते थे, वे व्यावहारिक कारण से उससे अलग रहते हैं। दूसरे यह कहते हैं कि हम जो कर रहे हैं, वही आज की हालत में अहिंसा का असली रूप है। वे भी अहिंसा पर प्रहार कर रहे हैं। इन दिनों दोनों तरफ से हिंसा को काफी वल मिला है, स्वराज्य के वाद मिला है। इसका मुकावला करना होगा।

सौम्य से सौम्यतर और सौम्यतम की ओर

मुकावला करने के लिए कोई-न-कोई योजना हो। पहली योजना, जिसका मैं कई दफा जिक्र कर चुका हूँ, यह है कि हमें धीरे-धीरे सौम्य मे से सौम्यतर में जाना होगा और फिर सौम्यतर से सौम्यतम मे जाना होगा। मुझे वड़ा आश्चर्य हुआ। आज एक पत्र आया, वगाल के चारुवावू का। आजकल हमने दो दफा घूमना शुरू किया है, उसके कारण कई लोगों को चिंता होती है। एक चिन्ता देह की होती है, सवको। मुझे भी है। लेकिन चारुवावू के पत्र मे चिन्ता नहीं है। उस पत्र ने मेरा ध्यान खींच लिया है। उसमे लिखा है कि आपने जो दो दफा चलना शुरू किया है, मैं समझता हूँ कि उससे आपने सौम्य सत्याग्रह को सौम्यतर सत्याग्रह में परिवर्तित किया है, और यह समझ करके कि इससे हमे वल मिलता है। ऐसा लिखा है। मुझे वह वहुत ही अच्छा लगा। मैं नहीं कह सकता कि इस तरह विचार करके सौम्य से सौम्यतर की तरफ वढने के लिए

हमने यह किया है। लेकिन सौम्यतर होने की वासना जरूर है। यह हो भी रहा है। जहाँ एक दिन पूरा रहते हैं, वहाँ जितनी कार्य-शक्ति एक पूरा दिन रहकर मनुष्य लगाता है, उतनी कार्य-शक्ति आधा दिन रहकर नहीं लगा सकता। वहाँ से विचार बतलाकर जाना ही पड़ेगा। क्या होता है ? हम करीब पाँच बजे शाम को मुकाम पर पहुँचते हैं। साढ़े पाँच को सभा होती है। सभा, पुस्तक-विक्री, हस्ताक्षर आदि कार्य सात बजे खतम होता है। साढ़े सात बजे हम खाते है। आधा घंटा मुश्किल से गाँववालो के साथ बात करने को मिलता है। दिनभर वहाँ रहते, तो जरूर कुछ-न-कुछ कार्य-शक्ति वहाँ लगानी होती। कुछ दबाव भी पड़ता। बहुत कुछ हो सकता। परन्तु आज तो होता यह है कि विचार समझा दिया—सहज भाव से आधे-पौन घटे मे हो जाता है—आगे बढ़े। यह प्रत्यक्ष मे सौम्यतर का ही रूप हो जाता है। उनके पत्र के बाद बात मेरे ध्यान में आयी कि इसमे सौम्यतर तो हो ही जाता है। तो, मै कहना यह चाहता था कि सौम्यतर का अर्थ मेरे मन में कुछ खुल रहा है। और मुझे बहुत आनन्द हुआ कि वह विचार शंकरराव देव के मन मे भी खुल रहा है। वह गीता मे तो है; लेकिन गीता हम समझते कहाँ हैं ? आहिस्ता-आहिस्ता थोड़ी-थोड़ी समझते हैं। इसीलिए जिन्दगीभर उस ग्रंथ का उपयोग होता है। एकदम समझते होते, तो उसका उपयोग ही खतम हो जाता।

परिणामस्वरूप क्रिया का आग्रह न हो

जिसे हम क्रिया कहते है, वह विचार को अमल मे लाने का साधन है। जिस तरह विचार को अमल मे लाने के लिए, विचार के अवतरण के लिए वह साधन है, उसी तरह वह विचार का परिणाम भी है। आप भूदान दें, उससे आपकी उदारता बढ़ेगी। आपकी उदारता बढ़ी, उसके परिणामस्वरूप आप भूमिदान देते हैं। अर्थात् क्रिया विचार-सिद्धि का साधन है और क्रिया विचार-सिद्धि का परिणाम भी है। जितने अंश में वह विचार-सिद्धि का साधन है, उतने ही

अश में उस पर हमारा भार होना चाहिए। जितने अंश में क्रिया विचार-सिद्धि का परिणाम है, उतने अंश में उसका आग्रह हमें नहीं रखना चाहिए। मेरे विचार के परिणामस्वरूप पाँच करोड़ एकड जमीन मिलनी चाहिए, ऐसा मैंने तय किया है। पर यह परिणाम है। इसलिए उस दानप्राप्ति की क्रिया की आसक्ति हमें नहीं होनी चाहिए। दान-विचार याने सम-विभाजन-विचार लोग समझे, मैं समझूँ, मेरे जीवन में वह विकसित हो, लोगो के जीवन मे वह विकसित हो ही जायगा। जब वे विचार समझेंगे, तब उसका परिणाम आ ही जायगा। उसका ज्यादा आग्रह हमें नहीं है। विचार ही मैं समझूँगा और समझाऊँगा। जितने अंश में क्रिया विचार-सिद्धि का साधन होती है, उतने ही अश में उस पर जोर दूँगा। जैसे पैदल चलना। मैं अगर पैदल नहीं चलता, तो विचार समझा नहीं सकता। इस वास्ते पैदल चलने का मैं आग्रह रखूँ, तो वह जरूरी है। परतु अगर दानप्राप्ति का आग्रह रखूँ, तो वह क्रिया परिणामस्वरूप क्रिया है। 'इतने दान-पत्र लिखवा लेने हैं, हरएक के पास जाकर समझाकर लिखवा लेना है'—अगर यों मैं करूँ, तो वह सौम्य कार्य नहीं है। उसमें फलप्राप्ति का आग्रह रहेगा। मैं नहीं जानता कि मैं स्पष्ट कर सका या नहीं कि कौन-सी क्रिया विचार-सिद्धि का साधन है और कौन-सी क्रिया विचार-सिद्धि का परिणाम, जिसका आग्रह हमे नहीं रखना चाहिए। लेकिन मेरे मन में कुछ इस तरह का भेद प्रकट हो रहा है।

शुद्ध विचार करना और कहना बहुत बड़ा काम

इसका परिणाम निवृत्ति-मार्ग मे होगा, ऐसा डर बहुतों को लगता है। पर मुझे इसलिए नहीं लगता कि निवृत्ति पहले से ही मेरे मन मे बनी है। अब कोई ज्यादा निवृत्ति आयेगी, ऐसा सभव बहुत कम है। तो, वह डर मुझे लगता नहीं। परन्तु मैं जानता हूँ कि क्रिया की अतिरिक्त आसक्ति नहीं होनी चाहिए। साधनारूप क्रिया की आसक्ति हो, लेकिन आगे की जो क्रिया है, उसे समाज करेगा। समाज की तरफ से जो क्रिया

होगी, उस क्रिया का आग्रह हम अपने मन से हटाना चाहते हैं। मैं नहीं मानता कि ऐसा कोई आग्रह मेरे मन मे पहले से भी था। परन्तु जहाँ एक सामूहिक कार्य शुरू होता है, वहाँ उसके साथ के कुछ संकल्प भी आते हैं। वे सामूहिक सकल्प होते हैं। इसमे कोई खास दोष नहीं है। परन्तु धीरे-धीरे इस प्रक्रिया का जो परिणाम आया, उसे देखते हुए, इससे अधिक सौम्य प्रक्रिया, अर्थात् जिसमें क्रिया की तीव्रता कम होगी और विचार की प्रक्रिया अधिक होगी, ऐसी कार्य-पद्धति हमे धीरे-धीरे लेनी होगी। मतलब यह कि शुद्ध विचार सोचने में, समझने मे, व्यक्तिगत रूप से उसके अमल मे और दूसरो को समझाने मे हमारे कार्य की पूर्ति होनी चाहिए। सोचना-समझना बहुत बड़ा काम है। इतना अगर हम अपने लिए करते हैं और हमारे मन मे किसी प्रकार का कोई मोह नहीं रह जाता, शुद्ध विचार का दर्शन हमे होता है, तो मैं मानता हूँ कि ६० फीसदी काम हो गया। देश का, दुनिया का, समाज का काम इसीलिए रुका हुआ है। याने हमारे जरिये जितना हो सकता था, वह काम। दुनिया का जो स्वतंत्र कार्य है, वह अलग। लेकिन हमारे जरिये जो हो सकता है और जो रुक रहा है, वह ६० फीसदी इसीलिए रुक रहा है कि हमारे विचार मे सफाई नहीं होती। मोह के कुछ पर्दे, कुछ अंश रह जाते हैं। शुद्ध विचार सोचना और शुद्ध विचार कहना स्वयं बहुत ही बड़ा कार्य है। फिर जब वह विचार चित्त मे आ गया, तो तदनुसार क्रिया होनी ही चाहिए। उसके बाद दूसरो के प्रति हमारा कर्तव्य इतना ही है कि उन्हें विचार समझा दें। उससे आगे हमारा कर्तव्य नहीं जाता। इस वास्ते अगर हम अधिक विचार-परायण बनें और क्रिया की जो मर्यादाएँ हैं, उनको ठीक समझे, तो अहिंसा अधिक फैलेगी, ऐसा हमे लगता है। याने भूमिदान को न छोड़ते हुए उस भूमिका को अपनी विचारसिद्धि के साधन के तौर पर पकड़कर बाकी परिशुद्ध अहिंसा-विचार को ही दुनिया मे फैलायें, और उसमें जितनी तपस्या चित्तशुद्धि के लिए करनी होगी, उतनी स्वयं करते

रहें, यह हमारा कार्य होना चाहिए। अगर ऐसा हो, तो हम समझते हैं कि हम एकागी नहीं रहेंगे। इस विचार-प्रवाह में, भूदान के प्रवाह मे, जितने लोगो को हमने खींच लिया है, उससे बहुत ज्यादा लोगों को हम खींच लेंगे और वे भी भूदान-कार्य में प्रवृत्त हो सकेंगे।

सर्वोदय-मंडलों की योजना

इसके बाद, आखिर में, इसके लिए क्या-क्या योजना हो सकती है, योजना कुछ हो सकती है या नहीं, ऐसा विचार मन में आता है। तो लगा कि हरएक प्रदेश में जहाँ एक भाषा का एक ही बडा प्रदेश बना है, वहाँ उस भाषा में और जहाँ हिन्दी जैसी एक ही भाषा के अनेक प्रदेश बने हैं, वहाँ जो प्रदेश बने हैं, उन प्रदेशो में अगर सर्वोदय-मंडल बने, तो कुछ लाभ होगा। यह सर्वोदय-मडल कोई एक योजनापूर्वक बनाया जाय, ऐसा कुछ मन में आता नहीं। क्योंकि मैं संगठन पर बहुत ज्यादा श्रद्धा भी नहीं रखता। परन्तु चाहे वह अव्यक्त रूप में ही हो, चाहे व्यक्त रूप भी उसका हो जाय, परन्तु ऐसा व्यक्त रूप हो, जो कि किसीको न जकड़े। एक शुद्ध विचार करनेवाले अर्थात् शुद्ध विचार का प्रयत्न करनेवाले लोग और सर्वभूत-हित में विश्वास करनेवाले, निष्काम कर्म माननेवाले, और पक्षातीत, हमारे पक्षातीत विचार मे भी जिनकी श्रद्धा है, ऐसे लोग इकट्ठे हों। श्रद्धा से मेरा मतलब इतना तो है ही कि तदनुसार क्रिया करने का मनुष्य प्रयत्न करेगा। ऐसी श्रद्धा जिनके अन्दर है, उनका एक मडल बन सकता है। धर्म के लिए इंग्लिश मे जो एक शब्द है, वह बड़े महत्त्व का है। वे 'धर्म' को 'फेथ' कहते हैं। एक 'हिन्दू फेथ' है और एक 'हिन्दू थॉट'। पर 'हिन्दू थॉट' तो चन्द लोग ही समझे हैं। 'हिन्दू फेथ' लाखो लोगो मे है। ऐसे ही इसलाम आदि 'फेथ' हैं। 'फेथ' मे लाखो लोग हैं, इस 'विचार' मे चद लोग ही हैं और कृति मे उससे भी थोडे लोग हैं। स्थूल आचार मे तो थोड़े लोग हैं, लेकिन विचारपूर्वक कृति में और भी थोडे लोग होते हैं। तो, धर्म के लिए यह जो

'फेथ' शब्द है, वह बहुत ही अच्छा है। सर्वोदय के लिए जिनके मन में 'फेथ' है, ऐसे जो भी दस-पाँच लोग हों, उनका एक मंडल बने। वे खास विषयों पर विचार करके एक शुद्ध विचार के रूप में लोगों के सामने रख दें। अगर सम्मिलित रूप से कोई चीज रखनी है, तो वैसा करें। वैसा न करना हो, तो कुछ चर्चा कर ली, फिर अलग हो गये। अलग जा करके वैसा कार्य करने लगे। ऐसा सर्वोदय-मंडल अगर बने, तो अच्छा रहेगा। शायद इस दृष्टि के विकास के लिए वह लाभदायी होगा।

आगे चलकर जैसे-जैसे हम जनता की तरफ आन्दोलन को ले जाने के संकल्प का अमल करते चले जायँगे, वैसे-ही-वैसे आज की हमारी जो समितियाँ आदि हैं, वे टूट जायँगी और लोग अपनी-अपनी ताकत के अनुसार अलग-अलग काम करेंगे। सलाह-मशविरा सर्वोदय-मंडल से कर लेंगे। सर्वोदय-मंडल का यह आग्रह नहीं रहेगा कि उनकी सलाह पर अमल होना ही चाहिए। लोगों पर ऐसा कोई भार नहीं रहेगा कि उनकी सलाह पर अमल न करें, तो दंड होगा। इसका एक नैतिक मूल्य है। उस नैतिकता के लिए ही लोग उसकी सलाह लेंगे। सलाह माँगेंगे, तो दी जायगी; न माँगने पर भी दी जायगी। इस तरह यदि कुछ आरम्भ हो, तो शायद इस विचार के लिए अनुकूल होगा।

धर्मपुरी,
४-८-'५६

शस्त्र-त्याग की शक्ति : ४ :

वहुत लोगों का खयाल है कि वल कुछ दूसरी वस्तु है। सत्त्व-गुण से वल वढता है, ऐसा वे निश्चित रूप से मानते नहीं। वे समझते हैं कि वल के लिए किसी दूसरी देवती की आराधना करनी होती है। सत्त्वगुण से शाति प्राप्त होती है, ऐसा लोग अक्सर मानते हैं। परतु सत्त्व-गुण में ताकत होती है, ऐसा विश्वास अभी बैठा नहीं है, इसलिए शक्ति की स्वतंत्र देवती मानी गयी है और उसके हाथ में सब प्रकार के शस्त्रास्त्र होते हैं। उस देवती की उपासना लोग अतिम श्रद्धा रखकर करते हैं। शांति की उपासना लोग करना चाहते हैं, परंतु अतिम श्रद्धा शांति में नहीं होती। वह शक्ति में ही होती है, इसलिए सतत यह भास होता है कि अगर शक्ति हमारे में न हो, तो हमारा वचाव कैसे होगा ? आत्मसमाधान के लिए, सामाजिक समता के लिए, मानसिक शाति के लिए सत्त्व-गुण की देवती मान्य है। यह भी मान्य है कि अगर रचनात्मक काम करना है, देश का विकास करना है, तो भी सत्त्व-गुण का उपयोग है, शाति की जरूरत है। परंतु अभी तक यह मान्य नहीं है कि रक्षण के लिए सत्त्वगुण समर्थ है। रक्षण के लिए दूसरी देवती की आराधना, दूसरी देवती की उपासना करनी होगी, ऐसा लोगों को लगता है।

शक्ति मूढ़ देवी है

वह जो (शक्तिरूपिणी) हमारी परम देवी थी, जिस पर हमनें अपने वचाव का आधार रखा, उसीने अव तीव्र रूप धारण किया है, इन दिनों। इसलिए एक प्रकार का डर पैदा हुआ है। आज भी माता-पिता वच्चे को प्रेम से समझाते हैं। लेकिन अगर वह नहीं समझता है, तो क्या करते हैं ? उसको एक तमाचा मारते हैं, याने आखिर माता-पिता का विश्वास प्रेम के वजाय मारने पर है। जो माता-पिता प्रेम के समुद्र होते हैं, वच्चों के हित के सिवा कुछ भी नहीं

चाहते, अर्थात् बच्चों के लिए उनके मन में जरा भी द्वेष नहीं है—वे भी, अगर बच्चे समझाने से नहीं मानते हैं, तो उनको दंड देना, मारना-पीटना, यही अंतिम उपाय समझते हैं। हमारे मन का निश्चय अभी तक नहीं हुआ है कि वह शक्ति-देवी हम लोगों के लिए तारक नहीं होगी, क्योंकि उसमें बुद्धि नहीं है। ऐसा अनुभव नहीं है कि जहाँ शक्ति होती है, वहाँ बुद्धि भी होती हो। शक्ति मूढ़ देवी है। जिस किसीके हाथ में शस्त्रास्त्र आते हैं, वह शक्तिमान् है। यह जरूरी नहीं है कि उसका सत्पक्ष हो। जो देवी मूढ़ है, उसको देवी मानना ही गलत है, उस पर विश्वास रखना भी गलत है, उस पर अंतिम विश्वास रखना तो और भी गलत है।

साम की अपेक्षा दण्ड में अधिक विश्वास

यह बात सर्वमान्य है कि जहाँ परस्पर में झगड़ा होता है, मतभेद होता है, वहाँ बातचीत से जितना हो सकता है, उतना करना चाहिए। सामपूर्वक ही कार्य करना चाहिए। परंतु कार्य सामपूर्वक नहीं हुआ, तो हम अपनी साम-बुद्धि का अधिक संशोधन करेंगे और अधिक उज्ज्वल साम उपस्थित करेंगे, ऐसा वे नहीं सोचते, बल्कि जब साम से काम नहीं होता, तो दण्ड का प्रयोग करना पड़ता है। लेकिन दण्ड का भी उपयोग न हुआ, तो उससे भी अधिक दण्ड की योजना करते हैं। और उससे भी काम न हुआ तो? तो उससे भी अधिक दण्ड की योजना खड़ी करते हैं। यों करते-करते अणु-अस्त्रों तक हम पहुँच गये, परंतु यह ध्यान में नहीं आया कि यह दण्ड-शक्ति विश्वसनीय शक्ति नहीं है; बल्कि यह दगा देनेवाली शक्ति है। यह किसी पक्ष का समाधान करनेवाली शक्ति नहीं है, कोई मसला हल करनेवाली शक्ति नहीं है, इसका भान अभी तक हमको नहीं हुआ। दण्ड-शक्ति ने अति उग्र रूप धारण किया, इस वास्ते कुछ डर है और उस वजह से मन कुछ डाँवाडोल है। परंतु चित्त में जो विश्वास है, दण्ड में, पूरा है, वह विश्वास उठा नहीं। वह कुछ थोड़ा-सा डिगा है। परंतु अभी तक दंड त्याज्य नहीं हुआ।

स्त्री में शक्ति का अभाव

कई दफा सोचा जाता है और मैं भी बहुत दफा कहता हूँ कि पुरुषों ने समाज का काम बहुत बिगाड़ा। अगर उसमें स्त्रियाँ दाखिल होंगी, तो शायद मामला कुछ सुधरेगा। कई दफा मैंने कहा है कि स्त्री-शक्ति अगर सामने आयेगी, तो तारण होगा। लेकिन आज स्त्रियों की हालत क्या है ? और उनका विश्वास क्या है ? वह अपने को रक्ष्य समझती हैं और पुरुषों पर रक्षण की जिम्मेवारी है, ऐसा मानती हैं। अमेरिका की स्त्रियाँ क्या कहती होंगी ? ये सारे अणुबम चलते हैं, तो क्या उनको अच्छा लगता होगा ? वे अपने पतियों से कहती होंगी कि यह ठीक नहीं हुआ, तो पति-देव उन्हें क्या समझाते होंगे ? समझाते यही होंगे कि देख, अगर यह न किया जाय, तो तेरे बाल-बच्चों की रक्षा नहीं होगी। तो स्त्रियाँ क्या कहती होंगी ? कहती होंगी कि अगर ऐसा है, तो बड़ा उपकार है कि यह सारे अस्त्र मिले। क्योंकि स्त्रियों को पुरुषों ने भयभीत अवस्था में रखा है और स्त्रियों का यह गुण माना गया है कि वे भयभीत हैं। अगर कोई स्त्री बहादुर दीखी, तो कहते हैं कि इसमें पुरुष का गुण है, स्त्री का स्वाभाविक गुण, याने भीरुता। अब इस हालत में स्त्रियाँ पुरुषों की मदद में आकर भी क्या करेंगी ? वह बंदूक उठायेगा, तो वे उसमें बारूद भरेंगी। दूसरे देशों में स्त्रियों की पलटनें भी बनती हैं और युद्ध में सब प्रकार की मदद करने के लिए स्त्रियाँ तैयार होती हैं। इसमें स्त्री-पुरुष भेद भी तो मदद नहीं दे रहा है।

करुणा परम निर्भय है

यह भी माना गया कि स्त्री मातृ-देवी होने के कारण अधिक दयालु, अधिक शांतिमय, अधिक करुणामय, अधिक वात्सल्यमय होनी चाहिए—होती है। परंतु जिस मनुष्य में देह और आत्मा के पृथक्करण का भान नहीं है, उसमें करुणा हो ही नहीं सकती। कुछ दया का गुण दीख पड़ता है, लेकिन वह करुणा संज्ञा की पात्र नहीं है। करुणा तो

बड़ा तेजस्वी गुण है। उसमें महान् सामर्थ्य है, उसमे डर नहीं है। वह परम निर्भय है। दया का जो भाव आता है, वह दुर्बलता के साथ आता है। गौतम बुद्ध को जो दर्शन हुआ, करुणा का, वह तीव्र तपस्या के अंत मे निर्भयता प्राप्त होने पर हुआ। वृत्रासुर से दुनिया को बहुत पीडा होती थी। इंद्र के सारे औजार नाकामयाव हो गये थे। इंद्र ने कहा कि यह सत्त्व-गुण से ही मरेगा। सत्त्व-गुण की मूर्ति उस जमाने मे दधीचि मुनि थे। इंद्र दधीचि मुनि के पास पहुँच गये। बोले, "जब हम तुम्हारी अस्थियों का शस्त्र बनायेंगे, तब इसे जीत सकेंगे।" उस करुणामय ऋषि ने सोचा कि मेरे पास और है ही क्या? सिर्फ हड्डियाँभर तो हैं। तो इन्हें दे दिया जाय। उसने अपनी देह का विसर्जन किया। उसकी अस्थियों का वज्र बनाया गया और उस वज्र से वृत्रासुर का मर्दन हुआ। दुनिया को भय-मुक्त करने के लिए अपना देह-विसर्जन करने की तैयारी उस शख्स की हुई, क्योंकि उसका हृदय करुणा से भरा हुआ था। जब तक देह और देह-संबंध मे हम पड़े रहेंगे, तब तक करुणा की शक्ति प्रकट नहीं होगी, चाहे जीवन मे दया थोड़ी-बहुत प्रकट हो जाय। यह बहुत सोचने की बात है।

शक्ति के सन्तुलन की नीति

यह समझना होगा कि आजकल भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के बीच बैलेन्स (संतुलन) रखने की जो कोशिश की जाती है, वह आज की विद्या नहीं है, सौ-दो सौ साल से यही चल रहा है। यह "बैलेन्स ऑफ पावर" (शक्ति के संतुलन) का विचार राजनीति मे और उसके दर्शन मे सौ-दो सौ साल से मान्य रहा है। इस "बैलेन्स ऑफ पावर" के लिए ही उस देश ने शस्त्रास्त्र बढ़ाये, तो हम भी बढ़ाते हैं, जिससे कि बैलेन्स रहे, (तराजू की डंडी बराबर रहे।) तराजू के इस पल्ले में पाँच सेर डाला, बैलेन्स नहीं रहा; तो उस पल्ले में पाँच सेर डाल दिया। अब इस पल्लेवाले ने और दो सेर ज्यादा डाला, तो डंडी इधर झुक गयी, तो उसने और उधर दो सेर डाला। ऐसा होते होते दोनों पल्लों में इतना वजन बढ़ा कि तराजू टूटने की नौबत आयी।

आज दुनिया में जो डर छाया हुआ है, उसका कारण यही है कि मन में भय है। एक पल्ले में भारी वजन पड़ा हुआ है, इसलिए दूसरे पल्ले में रखना ही पड़ता है। कुल मिलाकर सारा जीवन दु खमय है। "बैलेन्स" कायम रखने के लिए वजन दोनों तरफ समान रूप से बढ़ाते चले गये। "बैलेन्स ऑफ पावर" में विश्वास अभी गया नहीं है। लेकिन बहुत ज्यादा भार हरएक पल्ले में हुआ है, इसकी हानि मालूम हो रही है। दोनों एक-दूसरे से कह रहे हैं कि "बैलेन्स" को कायम रखना चाहिए, लेकिन दोनों तरफ वजन बढ़ाकर बैलेन्स कायम रखने के बजाय दोनों बाजू वजन कम करके बैलेन्स कायम रखेंगे, तो अच्छा होगा। इसलिए अब शस्त्र दोनों तरफ से परस्पर-सम्मति से कम हो जायँ, तो ठीक होगा, ऐसी बात हो रही है। इसका मतलब यह हुआ कि दो मनुष्यों के बीच बात हो रही है। एक बुद्धिमान् है, दूसरा मूरख। बुद्धिमान् मूरख से कह रहा है कि जब तक तू मूरख बना रहेगा, तब तक मुझे भी मूरख बनना होगा। अरे, तुझको मूरख बनना क्या पड़ेगा? तू मूरख तो है ही। नाहक बुद्धिमत्ता का आरोप तुझ पर हुआ था। वस्तुत. तुम वही हो, जो तुम होना चाहते हो।

हम बार-बार कहते हैं कि रशिया और अमेरिका, दोनों एक-दूसरे का खयाल न करें और एकपक्षीय निःशस्त्रता को स्वीकार करें, तब हमारी जिम्मेवारी स्पष्ट है। "परउपदेश कुशल बहुतेरे"—बहुत-से लोग परोपदेश मे कुशल होते हैं। आज भी भारत की आवाज दुनिया मे बुलन्द है। परतु जब तक हम निर्भय नहीं बनते हैं, तब तक उस आवाज मे वह ताकत नहीं आयगी, जिससे कि दुनियां और हमारा अपना देश हमेशा के लिए बच सके। भगवद्गीता मे भगवान् ने कहा है कि "सतो की रक्षा के लिए मैं अवतार लेता हूँ।" इसका अर्थ कुछ लोग यह करते हैं कि गीता कहती है कि सज्जनता की रक्षा के लिए, धर्म की रक्षा के लिए शस्त्र उठाना चाहिए। हम कहते हैं कि हमारे सामने दो ही विकल्प हैं, दो ही रास्ते हैं—या तो हम दुष्ट हो, या तो हम साधु हो। अवतार तो हम हो नहीं सकते। इनमे से हमारी कौन-सी कोटि है,

इसका हम निर्णय करें। अगर हम साधु हैं, तो साधुत्व ही हमारा रक्षण करेगा। यह इस भगवत्-वचन का वास्तविक अर्थ है। उसी साधुत्व को ईश्वर की विभूति कहते हैं। हमने तो लिख रखा है—"सत्यमेव जयते।" हमने यह कहाँ लिख रखा है कि सत्य+शस्त्र-शक्ति विजयते? हमने तो लिखा है, "सत्यम् एव जयते", केवल सत्य की ही जय होती है। क्योंकि सत्य के बचाव के लिए सत्य के सिवा और किसी चीज की जरूरत नहीं। परन्तु यह सारी चर्चा व्यर्थ हो जाती है, इसलिए कि सामनेवाला कहता है कि आपकी सारी बातें हमको मान्य हैं। जिसको हमारी बातें मान्य नहीं हैं, उसके साथ चर्चा हो सकती है। लेकिन यह तो कहता है कि 'सारी' बातें मंजूर हैं। परंतु आज की परिस्थिति में देश की रक्षा के वास्ते कुछ तो करना पड़ेगा। चित्त की यह जो दशा है, वह जब तक नहीं मिटती, तब तक दुनिया का निस्तार नहीं।

'राज्य' नहीं, 'प्राज्य' चाहिए

सर्वोदय-समाज को इस बात का निश्चय करना पड़ेगा। हम बार-बार कहते हैं कि जो अहिंसा में विश्वास रखते हैं, उनको लोक-नीति की स्थापना में ताकत लगानी चाहिए। याने राज-नीति की समाप्ति करने की कोशिश में हमको लगना चाहिए। अभी तक तो बहुत प्रयत्न किये गये कि राज-नीति को "स्पिरिच्युअलाइज" किया जाय। गोखले ने इस शब्द का प्रयोग किया, गांधीजी ने उस शब्द को उठा लिया। लोग समझते हैं कि गांधीजी ने ही प्रथम बार राज-नीति को, राज-कारण को, पॉलिटिक्स को, "स्पिरिच्युअलाइज" करने की, नीतिमय बनाने की कोशिश की। गांधीजी ने यह कोशिश जरूर की। लेकिन उन्होंने इतिहास में पहली दफा यह कोशिश की, ऐसा नहीं है। यही कोशिश मुहम्मद पैगंबर ने की। लेकिन उन्हें यश नहीं मिला। 'राज' और 'नीति', ये दो शब्द एक-दूसरे को काटते हैं। 'नीति' को 'राज' शब्द काटता है और 'राज' को 'नीति' शब्द काटता है। नीति आती है, तो राज्य-व्यवस्था आप ही खंडित हो जाती है। राज्य-व्यवस्था आती है, तो नीति खतम होती है। इसके आगे राज्य नहीं चाहिए, इसके आगे

प्राज्य चाहिए। हम नहीं जानते, कितने दिन में यह हो सकेगा। परतु करने लायक कोई काम अगर हमारे लिए है, तो यही है। "मेरे तो मुख राम नाम, दूसरा न कोई"—मेरे मुँह से राम-नाम के सिवा और कुछ नहीं निकलेगा, ऐसा निश्चय सर्वोदय-समाज को करना चाहिए। लेकिन गाधीजी के वहुत-से साथी मोहग्रस्त हैं। वे समझे हुए हैं कि हर हालत मे राज्य चलाने की जिम्मेदारी हमारी है ही। हम भी कवूल करते हैं कि अगर हमने स्वराज्य हासिल किया और राज्य चलाने की जिम्मेदारी नहीं उठाते, तो स्वराज्य हासिल किया ही क्यों? हमने जरूर वह हासिल किया, लेकिन इसलिए कि वह सत्ता हम अपने हाथ मे लें और उस सत्ता का विलयन करने का आरंभ, हाथ में लेने के दूसरे क्षण से ही कर दें। वह चीज हमें चाहे सधे पचास साल में, लेकिन उसका आरंभ आज से ही करना चाहिए।

कम्युनिज्म में राज्य नकद और विलयन उधार

भाइयो, इस विचार की छानवीन हम जितनी करें, थोड़ी ही है। कम्युनिस्ट लोग भी मानते हैं कि राज्य क्षीण होना चाहिए। पर वे मानते हैं कि आज की स्थिति में राज्य अधिक-से-अधिक मजवूत होना चाहिए। उसके आधार पर उसके प्रतिकूल जो शक्तियाँ हैं, उनके क्षीण होने पर राज्य के क्षय का आरभ होगा। इसलिए कम्युनिज्म में राज्य-शक्ति मजवूत करना, यह है 'नकद' और राज्य-शक्ति का विलयन होना, यह है 'उधार'। वह उधार कव हासिल होगा, इसका कोई हिसाव नहीं। आज की हालत में मजवूत-से-मजवूत ताकत चाहिए, यही इसका निष्कर्ष है।

हमारी असली कमजोरी

हमारी जो कठिनाई वास्तव मे है, उसको हम आपके सामने पेश कर रहे हैं। शस्त्र-त्याग के रास्ते में हमारी जो वास्तविक कठिनाई है, उसकी तरफ आपका ध्यान दिलाना है। मुश्किल यह है कि हमारे देश के [illegible]लनों मे, प्रजा में जो काम करते

हैं, उनमें हम सौमनस्य स्थापित नहीं कर सके। अहिंसा स्थापित नहीं कर सके। यह हमारी बहुत बड़ी और असली कमजोरी है। हमने बार-बार कहा कि हमको पाकिस्तान का जरा भी डर नहीं है। लेकिन हम कबूल करना चाहते हैं कि हमारे दाहिने हाथ को बाएँ हाथ का डर मालूम हो रहा है और बाएँ को दाहिने का।

हिन्दुस्तान की प्रजा में से हिंसा का विश्वास मिटा नहीं है, इसलिए हम कमजोर हैं। इसीलिए पूरी तरह से शस्त्र-त्याग करना हमारे लिए संभव नहीं है। अगर बाबा को यह विश्वास होता, आप लोगों को यह विश्वास होता और ऐसी परिस्थिति स्पष्ट दिखाई देती कि हिन्दुस्तान में सौमनस्य है और जब कोई भी सार्वजनिक कार्य किया जाता है, चाहे कोई आन्दोलन भी क्यों न किया जाता हो, तो भी उसमें किसी प्रकार का क्षोभ नहीं निर्माण होता, तब बाबा निःसंदेह होकर कहता कि शस्त्र-त्याग करो। इसलिए हमको बार-बार इस बात का मंथन करना चाहिए कि हम देश में नयी शक्ति कैसे उपस्थित करें, जो कल्याणकारी हो, जो समस्याएँ हल करने में समर्थ हो और किसी तरह का क्षोभ न होने दे। समस्याओं को हल करने-वाली समस्या-मोचिनी क्षोभरहित शक्ति की आवश्यकता है और भूदान-यज्ञ में यह हमारी खोज हो रही है।

हमारी बुद्धि उपाधिरहित बने

आप सब लोगों को इस खोज में लगना है। इसलिए हम एक बात बार-बार कहा करते हैं कि अपनी बुद्धि को किसी भी प्रकार की उपाधि से मत बाँधो। मैं ब्राह्मण हूँ, यह उपाधि गलत है, मैं फलानी भाषावाला हूँ, फलाने धर्म का हूँ, मेरा फलाना संप्रदाय है, मेरा फलाना राजनैतिक पक्ष है, यह उपाधि गलत है। ये सारी उपाधियाँ तोड़े बिना अहिंसा की शक्ति के विकास के लिए हमारी बुद्धि काम नहीं देगी। जैसे सूर्यनारायण आता है, तो किसी प्रकार के भेद उसके सामने टिकते नहीं। सबकी समान रूप से वह सेवा करता है। सूर्यवत् उदासीन हुए बिना हम अहिंसा की खोज नहीं कर सकते। सबसे

समान भाव से निर्लिप्त होना चाहिए। सबके अभिमुख हम हों। सबके सम्मुख हम हों। सबसे प्यार करें, लेकिन सब उपाधियों से अलग रहें। स्नेह-सबध करना चाहिए, ऐसा लोग कहते हैं। मैं इसका यह उत्तर देता हूँ कि स्नेह बढ़ना चाहिए, संबध की जरूरत नहीं।

सबके लिए अनासक्त मैत्री

मुझे बड़ी खुशी हुई कि यही विचार आज हमने बिल्कुल ऐसी ही भाषा मे "कुरल" में देखा। उसमें कहा है कि अगर मैत्री-भाव का विकास करना चाहते हो, तो करो। मैत्री का विकास करना चाहते हैं, तो 'पुनर्चि' की जरूरत नहीं है, 'उनर्चि' की जरूरत है। प्रेम-भावना होनी चाहिए। एक भाई ने हमसे पूछा कि प्रेम-भावना बढ़ाने के लिए क्या करना चाहिए? तो मैंने कहा कि अनासक्त होना चाहिए। चद लोगों के साथ, चद सस्थाओं के साथ, चद सप्रदायो के साथ अगर हमारी आसक्ति जुड़ी होगी, तो हम सबके साथ समान भाव से बरत नहीं सकेंगे। मान लीजिये, वर्तुल का घेरा है, जिसे परिधि कहते हैं। परिधि में अनेक बिन्दु हैं। उन बिन्दुओं में से मैं एक बिन्दु बनूँ, तो परिधि में जितने बिन्दु हैं, उन सबसे समान दूरी पर मैं नहीं रह सकता। एक बिन्दु मेरे नजदीक है और दूसरा दूर है। अगर मैं चाहता हूँ कि सब बिन्दुओं से समान फासले पर रहूँ, तो मुझे मध्य-बिन्दु बनना चाहिए, न कि परिधि का बिन्दु। इसीका नाम है निष्पक्ष वृत्ति। हम पक्ष मे पड़ करके, मत में पड करके, सप्रदाय में पड करके, उपाधि उठाकर किसीके नजदीक रहेंगे और [किसीसे दूर रहेंगे। हम अंहिंसा-शक्ति विकसित करना चाहते हो, तो हमें उपाधि-रहित होना ही पडेगा।

हमें डर पाकिस्तान से नहीं, जनता की हिंसा से

असली सवाल यह है कि जनता को किस दिशा में हम ले जायँ? लोगों की तरफ से कुछ दगा होता है, तो हमारा दिल व्याकुल हो उठता है। हमको बहुत तीव्र वेदना होती है। दूसरे लोग डरते हैं

"वर्ल्ड वार" से, जागतिक युद्ध से ! हम तो 'जागतिक युद्ध' को कहते हैं कि "तू आ जा, जितनी जल्दी आना चाहे, आ जा, जितनी जल्दी आना चाहे, आ जा।" मै तो उसको बुलाता हूँ, उसे 'डिवाइन' 'दैवी' कहता हूँ। जागतिक युद्ध मनुष्य लाता नहीं है। उसे परमेश्वर लाता है। परमेश्वर जब संहार चाहता है, तब वह जागतिक युद्ध लाता है। भगवान् कृष्ण का अवतार किसलिए हुआ था ? तो भू-भार-हरण के लिए। भूमि को जो भार हुआ था, उसके हरण के लिए उसने कौरवों का संहार कराया, पांडवों का संहार कराया। उसके बाद भगवान् गांधारी से मिलने के लिए गये, तो गांधारी ने कहा, "तूने ही यह सारा संहार कराया है।" यों तो स्वभाव से वह साध्वी शान्त थी, लेकिन उस वक्त बहुत क्षुब्ध हो गयी, क्योंकि उसके पुत्रों का संहार हो चुका था। तो बोली, "तू क्या समझता है ? तूने कौरवों का संहार कराया, पांडवो का संहार कराया, तो क्या तेरे यादव बचे रहेंगे ? उनका भी संहार जरूर होगा।" भगवान् हँसे ! इतना ही उसमें लिखा है, और कह दिया कि "तू जो सोचती है, वह जरूर होगा।" इसलिए जब भगवान् संहार चाहता है, तब वह जागतिक युद्ध पैदा करता है। उसकी हमें जरा भी चिंता नहीं है। लेकिन बंबई के दंगे, उत्कल की घटनाएँ हृदय को बहुत दुःखी बनाती हैं। ये सारी चीजें आज हिन्दुस्तान में न होतीं, तो बाबा बिल्कुल छप्पर पर खड़ा होकर जाहिर करता कि हिन्दुस्तान का प्रथम कर्तव्य है कि वह शस्त्रों का परित्याग आज ही करे। हमारे शस्त्र-त्याग के मार्ग में पाकिस्तान बाधक नहीं है। यह जो '४२ के आन्दोलन में हमने एक मूर्खता सीख ली है और जिसका अभ्यास अब भी हम कर रहे हैं, वह हमारा मुख्य डर है।

उद्धार न तो पुरुष करेगा, न स्त्री

अपने समाज का, सर्वोदय-समाज का कर्तव्य है कि हम हिन्दुस्तान में सार्वभौम प्रेम पैदा करें और सब प्रकार से निरुपाधिक वृत्ति लोगों में निर्माण करें। आज महादेवी ने मुझसे कहा कि यहाँ बहुत-से

व्याख्यान हुए, लेकिन स्त्रियों के लिए कुछ नहीं कहा गया। यहाँ इतनी स्त्रियाँ आयी हैं, इसलिए उनके लिए भी कुछ कहिये। बार-बार यह विश्वास भी बतलाया जाता है कि पुरुषों से ज्यादा अहिंसा स्त्रियों के दिल में होती है। लेकिन हमारा विश्वास है कि अहिंसा का विकास न तो वे करेंगे, जो पुरुप हैं और न वे करेंगी, जो स्त्रियाँ हैं। लेकिन वे करेंगे, जो पुरुप और स्त्री, दोनों से भिन्न आत्मस्वरूप हैं।

देह और आत्मा की भिन्नता का ज्ञान जरूरी

जब तक हम शरीर का यह आवरण लिये हुए हैं और इसमें फँसे हुए हैं, तब तक अहिंसा का विकास नहीं हो सकता। आप कहेंगे कि आपने बहुत कठिन बात बतायी। हम कहना चाहते हैं कि हमने कोई कठिन बात नहीं बतायी, जो सत्य वस्तु है, वही कही है। हमारा विश्वास है कि एक बच्चे को भी देह-भिन्न आत्मा का भान कराया जा सकता है।

कुछ लोग हमसे पूछते हैं कि नयी तालीम की व्याख्या करो। कई प्रकार की व्याख्याएँ की जाती हैं। कहा जाता है कि उद्योग के जरिये जो तालीम दी जाती है, उसे नयी तालीम कहते हैं। जिस तालीम के द्वारा शरीर और आत्मा के पृथक्करण की भावना बच्चों में पैदा होगी और मैं देह नहीं हूँ, बल्कि देह से भिन्न आत्मा हूँ, इस तरह का प्रत्यय बच्चों मे पैदा होगा, वह सर्वोत्तम, श्रेष्ठ तालीम है। उसे चाहे नयी तालीम कहिये, चाहे पुरानी।

सर्वोदयपुरम् (कांचीपुरम्) सर्वोदय-सम्मेलन का

२९-५-'५६ अंतिम भाषण

भूदान-सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाएँ

भूदान-यज्ञ (हिन्दी : साप्ताहिक)

संपादक : धीरेन्द्र मजूमदार

पृष्ठ-संख्या १२ वार्षिक शुल्क ५)

इस साप्ताहिक में सर्वोदय, भूदान, खादी-ग्रामोद्योग, ग्राम-जीवन, अर्थ-स्वावलम्बन-सम्बन्धी विविध सामग्री का सुरुचिपूर्ण चयन रहता है।

भूदान-तहरीक (उर्दू : पाक्षिक)

संपादक : धीरेन्द्र मजूमदार

पृष्ठ-संख्या ८ वार्षिक शुल्क २)

इसमें भूदान-सम्बन्धी विचारों को उर्दू-भाषी जनता के लिए, सरल भाषा में दिया जाता है।

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन, राजघाट, काशी

भूदान (अंग्रेजी : साप्ताहिक)

संपादक : धीरेन्द्र मजूमदार

पृष्ठ-संख्या ८ वार्षिक शुल्क ६)

भूदान-सम्बन्धी यह अंग्रेजी साप्ताहिक पूना से प्रकाशित होता है, जिसमें भूदान-यज्ञ की विविध प्रवृत्तियों का विवरण और विवेचन रहता है।

पता—भूदान कार्यालय,
२७४, शनिवार पेठ, पूना—२

सर्वोदय और भूदान-साहित्य

(विनोबा)

पुस्तक	मूल्य
गीता-प्रवचन	१)
शिक्षण-विचार	१॥)
स्थितप्रज्ञ-दर्शन	१)
त्रिवेणी	॥)
साहित्यिकों से	॥)
कार्यकर्ता-पाथेय	॥)
विनोबा-प्रवचन	।।।)
सर्वोदय के आधार	।)
पाटलिपुत्र में	।-)
एक बनो और नेक बनो	=)
गाँव के लिए आरोग्य-योजना	=)
गाँव-गाँव में स्वराज्य	=)
भगवान् के दरबार में	=)
व्यापारियों का आवाहन	=)
ईशावास्य वृत्ति	।।।)
विनोबा के विचार	२)
विचार-पोथी	१)
उपनिषदों का अध्ययन	।।।)

(धीरेन्द्र मजूमदार)

पुस्तक	मूल्य
शासन मुक्त-समाज की ओर	।=)
युग की महान् चुनौती	।)
नयी तालीम	॥)
ग्रामराज	।)

(श्रीकृष्णदास जाजू)

पुस्तक	मूल्य
संपत्तिदान-यज्ञ	।)
व्यवहार-शुद्धि	।=)

(दादा धर्माधिकारी)

पुस्तक	मूल्य
साम्ययोग की राह पर	।)
क्रान्ति का अगला कदम	।)
मानवीय क्रान्ति	।)

(अन्य लेखक)

पुस्तक	मूल्य
सर्वोदय का इतिहास और शास्त्र	।)
जीवनदान	।)
श्रमदान	।)
भूदान-आरोहण	॥)
पावन-प्रसंग	।=)
सत्संग	॥)
सन्त विनोबा की आनन्द-यात्रा	१॥)
सुन्दरपुर की पाठशाला	।।।)
विनोबा के साथ	१)
क्रान्ति की राह पर	१)
क्रान्ति की ओर	१)
सबै भूमि गोपाल की (नाटक)	।)
पावन-प्रकाश (नाटक)	।)
क्रान्ति की पुकार	≡)
पूर्व-बुनियादी	॥)
गोसेवा की विचारधारा	॥)
ग्रामशाला-ग्रामशान	१)
भूमि-क्रान्ति की महानदी	।।।)
भूदान-दीपिका	=)
साम्ययोग का रेखाचित्र	=)
गाँव का गोकुल	।)
ज्ञानदेव-चिन्तनिका	।।।)
सर्वोदय भजनावलि	।)

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन

रा ज घा ट, का शी